

समयसार, कलश ३० का विस्तार है न, ३० में ऐसा आया कि इस जगत में मैं एक आत्मा अपने सर्वस्व स्वभाव के रूप से भरपूर पदार्थ हूँ। जीव का स्वरूप है न, अन्तिम अधिकार है न। इस लोक में मैं स्वतः ही अपने एक आत्मस्वरूप का अनुभव करता हूँ,.... मेरे अनुभव के लिये मुझे किसी उपदेश की जरूरत नहीं है तथा अपने अनुभव के लिये किसी राग की मन्दता के विकल्प की भी जरूरत नहीं है। आहाहा!

**श्रोता :** तो किसकी जरूरत है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जरूरत, अपने स्वभाव सन्मुख होकर अनुभव करना वह, आहाहा! ऐसा है। जन्म-मरण रहित होने का उपाय यह है। बाकी तो जन्म-मरण करके अनन्त काल से दुःखी है। लोग कहते हैं न कि यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम हों तो अन्दर आत्मा का कल्याण हो। यह बात एकदम मिथ्या बात है। आहाहा!

स्वयं से अनुभव करता हूँ, स्वरूप सर्वतः निजरसरूप चैतन्य के भाव से पूर्ण भरा हुआ हूँ। मैं चैतन्यलोक हूँ।

**श्रोता :** इसमें परिणमन है अर्थात्... ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वभावभाव। कल कहा था - पारिणामिक स्वभावभाव। परिणमन (अर्थात्) पर्याय नहीं। चैतन्य के इस स्वभावभाव से भरा हुआ भगवान मैं हूँ। आहाहा! चैतन्यलोक! कल दोपहर में आया था न? चैतन्यलोक! जिसमें अनन्त गुण... 'लोकयन्ते' (अर्थात्) ज्ञात हों, ऐसा यह चैतन्यलोक है। आहाहा! इस चैतन्यलोक में - अनुभव में जाने पर मेरा कोई भी राग-मोह लगता नहीं है। मोह में आया है न कल? परतरफ की सावधानी का जो विकल्प है, उसे और मेरे स्वभाव को कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्य के समूह की निधि हूँ, चैतन्यलोक के स्वभाव का मैं तो सागर / निधि / सिन्धु हूँ।

**श्रोता :** यह तो त्रिकाली स्वरूप की बात आयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु यही है परन्तु अनुभव करती है, वह पर्याय, किन्तु है ऐसा। आहाहा! चैतन्यलोक परमात्मस्वरूप मेरा; उसे मैं पर के सम्बन्ध बिना, मोह के सम्बन्ध बिना, मेरे स्वरूप का मैं अनुभव करता हूँ। इसका नाम आत्मा का ज्ञान और आत्मदर्शन कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। जो आज दशहरा है न? राम, लक्षण ने, राम ने रावण का सिर तोड़ा था और विजयादशमी है। भरत चक्रवर्ती ने आज विजय विजय की थी। आहाहा! बाहर की, छह खण्ड की यह विजय है और आसोज महीने का विजय माह कहलाता है। विजयादशमी, एक तो रावण को मारा आज, वे महापुरुष थे, तो भी मारा।

**श्रोता :** मारा वे परिणाम कैसे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मारा, वे दुःखदायक परिणाम थे परन्तु दूसरा कोई उपाय नहीं। उस भूमिका- वासुदेव की बलदेव की भूमिका... भाव में अन्दर खेद हुआ है। आहाहा! रावण को मारा, रावण की देह छूट गयी, वह यह दिवस है। फिर भी उसकी (रानी) मन्दोदरी के पास दोनों गये।

**श्रोता :** मारने के बाद गये न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मारने के बाद गये... परन्तु यह तो मेरी पदवी के योग्य था, वह हुआ, बा! माता! मैं किसी का वैरी नहीं, आहाहा! आहाहा! देखो तो!! उत्तम पुरुष,

सम्यग्दृष्टि हैं... मैं तो आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ। अन्दर यह राग आया, उसे और मेरे कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु आया। आहाहा! और द्वेष आया है, उसे और मेरे स्वरूप को कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु अस्थिरता से यह काम हो गया, माता! आहाहा! रावण की स्त्री से कहते हैं बा! माफ करना, मुझसे – हमसे यह हुआ। हम यह पदवीधर, इसलिए यह हुआ, दूसरा क्या हो? आहाहा! उसके शमशान में साथ गये। आहाहा! यह कोई ढोंग किया होगा? उन्हें पदवी प्रमाण वह द्वेष आ गया और वह स्थिति बन गयी। उन्हें वासुदेव-बलदेव की पदवी है... आहाहा! साथ गये, ऐसे जलाते हैं; तालाब की पाल पर राम और लक्ष्मण बैठते हैं। आहाहा! वे पुरुषोत्तम पुरुष राम, उन्हें यह देखते हैं कि आहाहा! यह स्थिति! अन्दर जो आया द्वेष, उसे और मेरे कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु वह अस्थिरता से आया। आहाहा! वह यह दिन है, आहाहा! उस लंका में रामचन्द्रजी ऐसे बैठे होंगे, तालाब की पाल पर... आहाहा!

इसी तरह भरत चक्रवर्ती को आज छह खण्ड को साधने का अन्तिम दिन था। छह खण्ड साधकर आज पूर्ण हुआ। परन्तु वे भी सम्यग्दृष्टि थे। आहाहा! छह खण्ड को साधने का विकल्प भी आया है, परन्तु मेरे स्वरूप को और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! आहाहा! ऐसा जानकर राग से भिन्न होकर, मोह से भिन्न होकर, भगवान आत्मा के स्वरूप को – चैतन्यलोक महाप्रभु के स्वरूप को अनुभव करते हैं। आहाहा! **इस प्रकार गाथा में मोह पद है, उसे बदलकर राग शब्द लेना।** मोह है न, उसके बदले राग... राग को और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। राग को और मुझे कोई नाता नहीं है, मेरी जाति का नहीं है। आहाहा! मैं चैतन्यलोक-आनन्दस्वभाव से भरपूर लोक, उसे और राग को कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरी जाति का नहीं, इसलिए मेरा नाता नहीं। आहाहा! मेरी जाति का नहीं, इसलिए मुझे उसका सम्बन्ध नहीं। आहाहा! उसके सम्बन्ध से रहित मेरी चीज परिपूर्ण भगवान है। जीवस्वरूप चैतन्य लोक हूँ। आहाहा! मैं उसे अनुभव करता हूँ। इस ज्ञानस्वरूपी भगवान को और राग को कोई सम्बन्ध नहीं है; इसलिए भगवान आत्मा राग के रसरहित और चैतन्य के रसवाला प्रभु... आहाहा! उसे मैं अनुभव करता हूँ। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि को ऐसा अनुभव होता है। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, कठिन (है), बापू!

यह तो लोग कहते हैं - लोक की सेवा करो, भक्ति करो, पूजा करो, व्रत पालो, यह सब तो राग की क्रिया, प्रभु! राग के कारण आत्मा का अनुभव हो, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा!

यह द्वेष... द्वेष आया, जरा रावण को मारने का... भरत चक्रवर्ती को छह खण्ड साधने का.. परन्तु आहा! उस द्वेष को और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है, मेरा भगवान आत्मा की जाति सिद्धस्वरूप की जाति को और इस द्वेष के अंश को कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! मैं तो मेरे स्वभाव से भरपूर भगवान को जानता और अनुभव करता हूँ। आहाहा! इसका नाम आत्मज्ञान और आत्मदर्शन कहा जाता है। आहाहा!

फिर उसका भेद क्रोध... क्रोध पर के प्रति जरा अरुचि आ जाये, उसे और मेरे चैतन्य शुद्धस्वरूप को कोई सम्बन्ध नहीं है, वह मेरी जाति का नहीं है। वह कजात का क्रोध है। आहाहा! मेरी जाति तो आनन्द और ज्ञान से भरपूर प्रभु, उसकी जाति को और क्रोध को कोई सम्बन्ध नहीं है - ऐसा कहकर अपने चैतन्यस्वरूप से भरपूर भगवान को पर्याय में सन्मुख होकर अनुभव करता हूँ, वह मैं हूँ, वह मैं आत्मा हूँ। आहाहा!

इसी प्रकार मान... जरा मान का भाव आवे, कहे कि मेरी जाति से भिन्न जाति, कजाति है। आहाहा! वह चाण्डालिन का पुत्र है, वह विभाव का पुत्र है, वह मेरा स्वभाव नहीं। मेरे भगवान को तो मानरहित के सम्बन्धवाला मैं जानता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसी बात है। आहाहा! मान।

माया... आहाहा! माया, जरा कपट की पर्याय, वह मेरे स्वभाव की जाति नहीं है, प्रभु! मैं तो भगवान की जाति का, भगवान की बिरादरी का हूँ। आहाहा! मेरा कुल तो भगवान की बिरादरी का है। आहाहा! समझ में आया? मेरा कुल तो भगवान की बिरादरी और जाति का है। उसमें यह माया मेरी नहीं, मुझे और इसके कोई सम्बन्ध नहीं। आहाहा! मैं तो मायारहित चैतन्यस्वभाव से भरपूर भगवान को अनुभव करता हूँ। आहा! कहो, छोटाभाई! यह मोटाभाई की बात है! यह शान्ति... शान्ति... शान्ति आत्मा... आहाहा! मेरा नाथ तो शान्ति का सागर है। अकषायस्वभाव से शान्ति... शान्ति... शान्ति... और वह मेरा स्वभाव है। यह माया तो अशान्ति (है)। आहाहा! मेरी शान्ति की जाति की यह नहीं है। बापू! यह सब तो धीरजवान का काम है।

धर्म कोई बाहर की प्रवृत्ति करे, व्रत पाले और भक्ति करे तथा पाँच महाव्रत के परिणाम, वे कोई धर्म नहीं है। आहाहा! यहाँ तो इस प्रकार का लोभ — महाव्रतादि की इच्छा आयी कि अरे...! आहाहा! ऐसी इच्छा को तथा महाव्रत के परिणाम को और मेरे स्वभाव को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

कल दोपहर को तो आया नहीं था? चैतन्यलोक! जिसमें अनन्त.. अनन्त... बादशाह भगवान, उसमें अनन्त गुण की प्रजा अन्दर पड़ी है। आहाहा! ऐसा मेरा चैतन्यलोक असंख्य प्रदेशी मेरा स्वदेश, आहाहा! उसमें मेरे अनन्त ज्ञान आदि वीतरागी स्वभाव से भरपूर मैं हूँ। आहाहा! और उस मेरी सम्पदा में न्यूनता नहीं है। आहाहा! तथा प्रभु में - सम्पदा में रमणीयता भरी है। मेरे प्रभु में तो रमणीयता भरी है। आनन्द और शान्ति में रमण हो, ऐसी रमणता भरी है। आहाहा! उसमें से निकलना मुझे कैसे रुचे? कहते हैं। आहाहा! शशिभाई! आहा... मेरा नाथ आनन्द और शान्ति से भरपूर प्रभु मैं मेरी रमणता... यह लोभ की रमणता मेरी नहीं। आहाहा! समझ में आया? उस रमणता में से निकलना रुचता नहीं परन्तु पुरुषार्थ की मन्दता से जरा राग-लोभ आ जाता है। मेरे और उसके कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

इसी तरह कर्म.... आठ कर्म को और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा! जीव को कर्म न हो, तब किसे जड़ को होंगे? अरे! सुन न भाई! आठ कर्म हैं, वे तो अजीवतत्त्व, जड़तत्त्व हैं, प्रभु! वह तो जड़ लोक है। आहाहा! एक एक परमाणु में अनन्त-अनन्त गुणों का वह जड़ लोक है। आहाहा! ऐसे अनन्त परमाणुओं का पिण्ड जो आठ कर्म, वह जड़ लोक मेरा नहीं है; मेरा तो चैतन्य लोक है! आहा! मेरे भगवान ने तो आनन्द आदि, शान्ति आदि स्वभाव के सागर भरे हैं। आहाहा! ऐसा वीतरागस्वरूप परमात्मा... आहाहा! यह दया, दान, व्रत का विकल्प उठे, वह भी कर्म की जाति है, मेरी जाति नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भाई! आत्मधर्म, सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा वह बापू! कोई अलौकिक है प्रभु! आहाहा! उसमें आज विजयदशमी का दिन है। आहाहा! आत्मा की विजय कर, प्रभु! आज। आहाहा!

**श्रोता :** आपका आशीर्वाद चाहिए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! उसे काल और राग, कर्म कुछ बाधक नहीं, प्रभु! आहाहा! यह कर्म मेरी बिरादरी नहीं, जाति नहीं, यह तो अजीब है; मैं तो चैतन्य लोक भगवान हूँ – ऐसा अनुभव कर, प्रभु! तुझे आत्मा में आनन्द आयेगा। आहाहा! तुझे उसमें से सिद्ध की बानगी मिलेगी। आहाहा! भगवान आत्मा सिद्धस्वरूपी प्रभु, वह मैं हूँ – ऐसा जानते-अनुभव करते हुए सिद्ध की बानगी, आनन्द की बानगी मिलेगी। आहाहा!

भाई! स्वभावसन्मुखता का पुरुषार्थ, अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ है भाई! क्योंकि अनन्त गुणों को स्वीकार करना और राग की विकल्पदशा कर्म की, सम्बन्ध तो भी नहीं स्वीकार करना, आठ कर्म का सम्बन्ध है तो भी नहीं स्वीकार करना और स्वभाव अनन्त गुण है, उसे स्वीकार करना, यह बापू। आहाहा! ऐसा मैं आत्मा (हूँ), मुझे और कर्म को कोई सम्बन्ध नहीं है।

**मन...** यहाँ यह मन है, आठ पंखुड़ी के अनन्त परमाणुओं से बना हुआ, वह जड़ है, उसे और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। अरे! अन्दर मानसिक भावमन जो संकल्प-विकल्प, उसे और मेरे कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसे धर्मी सम्यग्दृष्टि को ऐसा अनुभव होता है। आहाहा! समझ में आया? **मन...** मन जो है, उसे और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा स्वभाव का सम्बन्ध है, उसके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है – ऐसा धर्मी ज्ञानी जीव अपने आत्मस्वरूप को सम्पूर्ण पर के सम्बन्धरहित इस आत्मा का अनुभव करे वह आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं, उसे जीवतत्त्व कहते हैं। आहाहा!

इसी तरह **वचन...** यह वचन है, उसके और मेरे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो जड़ है। आहाहा! यह वाणी है, वह मैं बोल सकता हूँ... प्रभु! यह तुझमें नहीं है, भाई! आहाहा! यह भाषावर्गणा में से उठता है वचन — भाषा, उसको और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा! मैं बोलता हूँ – ऐसा है ही नहीं। आहाहा! कौन बोले प्रभु? बोले वह दूसरा, वह भगवान (आत्मा) नहीं। आहाहा! उपदेश में विकल्प आवे परन्तु मुझे और उसके कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि, जीवतत्त्व को इस प्रकार जानता और अनुभव करता है। आहाहा! वाणी का प्रयोग हो, वह मेरा नहीं। अब यह लोग कहते हैं – तो फिर उपदेश किसलिए देते हो? आहाहा! कौन करे, प्रभु? सुन, भाई!

**श्रोता :** यह बड़ा प्रश्न है ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तुम कहते हो कि परद्रव्य का कर सकता नहीं तो फिर यह मन्दिर और यह उपदेश क्यों करते हो ? प्रभु! सुन भाई! इस वाणी को कौन करे ? नाथ! तुझे पता नहीं। ज्ञानस्वरूप, वाणी से भिन्न गुप्त है। आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य ने नहीं कहा ? कि वाणी से तो मेरा चैतन्यस्वरूप भिन्न है, गुप्त है; इसीलिए मैंने यह टीका की, ऐसा मत मानना, नाथ! आहाहा! आहाहा! और मेरी टीका से तुम्हें समझ में आयेगा, ऐसा मत मानना प्रभु! आहा!

**श्रोता :** टीका पुद्गल ने की है...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** (टीका) पुद्गल ने की है, भाई! आहाहा! उस समय जो शब्द की पर्याय का - परमाणु के उत्पन्न का काल था, भाई! इस वचन में परमाणु-जड़ भाषा में उस समय वचनरूप परिणमित होने का जन्मक्षण था; इसलिए वह भाषा है, प्रभु! उसे और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! गले उतरना (कठिन पड़ता है)। बाहर के व्यवहार की प्रवृत्ति में पड़े और मनवावे धर्म! आहाहा! कठिन बातें हैं, भाई! आहाहा!

यह महीना भी विजयदशमी है, आसोज माह का नाम विजया माह है, विजया माह है शास्त्र भाषा से। आहाहा! कहते हैं कि कर्म को और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! तब जड़ के साथ सम्बन्ध है कर्म को ? यह कर्म जड़ का ही स्वरूप है। आहाहा! अभी की प्रवृत्ति जगत की इतना अधिक फेरफार है। आहाहा! साधु और बड़े पण्डित ऐसी ही बातें किया करते हैं - ऐसा करो, ऐसा करो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो... आहाहा! साधु को दान दो - यह तो सब, प्रभु! राग की क्रिया है, भाई! आहाहा! इसे और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए कर्म का भावक, उससे हुआ भाव; वह मुझे और उसके कोई सम्बन्ध नहीं है। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं। उसे सन्त जगत को आड़तिया होकर, आहाहा! जगत को जाहिर करते हैं, प्रभु! एक बार सुन न प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता! वचन से बोला जाये उसे कर्म (के साथ) सम्बन्ध है, वह तेरी प्रभुता नहीं; तेरी प्रभुता तो कर्म के सम्बन्धरहित हूँ, वह तेरी प्रभुता है।

आहाहा! कर्म के सम्बन्ध में हूँ, वह तो पामरता है। आहाहा! इस कर्म के सम्बन्धरहित तेरा तत्त्व है, वह प्रभुत्वतत्त्व है। आहाहा! अभी (प्ररूपणा में) बदलाव बहुत हो गया है। क्या हो? आहाहा!

**काय...** इस काया को और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो जड़ की दशा, यह हिले, रहे यह सब जड़ की क्रिया है। मैं इसे हिलाऊँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! 'काया की विसारी माया, स्वरूप में समाये ऐसे, निर्ग्रन्थ का पन्थ भव अन्त का उपाय है' आहाहा! काया-परमाणु-मिट्टी-धूल इसे सुन्दर लगती है, लगे कि यह सुन्दर, वह मिट्टी है, प्रभु! आहाहा! वह जड़ है, अजीव है, वह अजीवतत्त्व है। आहाहा! उसे और मेरे जीवतत्त्व को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! शास्त्र में तो ऐसा आता है कि जीव को पाँच शरीर हैं - औदारिक, तैजस, कार्मण तीन शरीर है। रास्ते में (विग्रहगति में) कार्मण और तैजस दो हैं और तीन हैं नारकी को - तैजस, कार्मण, वैक्रिय तीन हैं। कोई मुनि आदि किसी को तो फिर आहारक और - ये होते हैं। आहारक शरीर होता है। आत्मा को यह शरीर होता है, या जड़ को? कि यह शरीर ही आत्मा को नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! लोगों को फेरफार लगता है (किन्तु) वस्तुस्थिति यह है।

शरीर की क्रिया जो क्षण-क्षण में यह हिले-चले, यह होंठ हिले - यह सब जड़ की पर्याय है। आत्मा उसे नहीं करता और आत्मा को तथा उसको कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! यह देह जो ऐसी हिलती है, कहते हैं कि इस आत्मा को और हिलने की क्रिया को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसे देह का पैर जो ऐसे फिरता है, उसे और जमीन को भी कोई सम्बन्ध नहीं है। जमीन परद्रव्य है, यह शरीर परवस्तु है। जो यह पैर नीचे जमीन को छूता है - शरीर? नहीं। आहाहा! ऐसी बात है - कहते हैं।

**श्रोता :** पाँच हजार धनुष ऊँचे रहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह फिर अलग, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? यहाँ तो हिलने पर भी छूता नहीं, यह बात करनी है, उसकी बात है। वह बात कुछ और यह बात कुछ है। है? समझ में आया? आहाहा! पाँच सौ धनुष ऊँचे हैं तो भी वहाँ आकाश को छूते नहीं। यहाँ सम्बन्ध है - ऊँचे हैं, इसलिए छूते नहीं ऐसा सिद्ध हो वैसा है? नहीं, नहीं। सब



फेरफार बहुत है, सब ख्याल में है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! शरीर ऐसा चलता है पैर, यह जमीन को स्पर्शता नहीं – ऐसा कहना है। जमीन को स्पर्श कर पैर चलता है – ऐसा नहीं है। वह पैर अपने कारण के-करण के सम्बन्ध से ऐसा चलता है। अपने आधार से चलता है। इस शरीर को और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है – ऐसा कहते हैं। जबकि उसके साथ सम्बन्ध नहीं है, आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहना है। भगवान आत्मा चैतन्यरस आनन्दस्वभाव से भरपूर मैं, मुझे और शरीर को कोई सम्बन्ध नहीं है। तब कितने ही लोग ऐसा कहते हैं, ठीक! शरीर की क्रिया चाहे जिस प्रकार हम करें और वह शरीर की है – ऐसा मानें... कर सकता ही नहीं, फिर प्रश्न कहाँ है? आहाहा! शरीर जड़ है, अजीव है, पुद्गल की पर्यायवाला तत्त्व है। उसे जीव की पर्याय के साथ भी कोई सम्बन्ध नहीं है, द्रव्य-गुण के साथ तो है नहीं। आहाहा! है भाई! वस्तु ऐसी है। आहाहा! शरीर को कोई सम्बन्ध नहीं।

**श्रोत्र...** इस श्रोत्र इन्द्रिय को और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! कान, अन्दर वह तो जड़ की पर्याय है, वह तो मिट्टी-धूल की है, उसे और मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! श्रोत्र इन्द्रिय से सुनता है और जानता है न? नहीं; वह तो ज्ञान से जानता है, श्रोत्र इन्द्रिय से नहीं और वह भी शब्द आये, इसलिए शब्द से जानता है – ऐसा नहीं है। आहाहा! शब्द को और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर शब्द आये, इसलिए जाना है – ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा है उथल-पुथल! जगत से अलग बात है, भाई! वीतराग परमेश्वर जिनेश्वर देव का पन्थ तो कोई अलौकिक है। आहाहा!

श्रोत – यह कहते हैं न कि यह सुनने का मिला न, इसलिए इतने ऊँचे आये न, निमित्त है और एकेन्द्रिय में से... परन्तु वह शब्द सुनने की क्रिया (होती है) परन्तु वह कान ही जीव का नहीं, फिर मिला कहाँ से यह कहा? एकेन्द्रिय में नहीं था और यहाँ मिला, इतना साधन तो ऊँचा आया न? साधन नहीं, भाई! आहाहा! कठिन काम है, यह इन्द्रिय ही आत्मा नहीं। आहाहा!

**चक्षु...** आँख को और आत्मा को कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। वह तो मिट्टी-धूल अजीव। आँख अजीव की-मिट्टी की पर्याय है। प्रभु! तू अरूपी आत्मा तो उससे भिन्न है। उसे और आँख को कोई सम्बन्ध नहीं है। आँख द्वारा ज्ञात होता है न? नहीं; जाननेवाला

तो ज्ञान द्वारा जानता है। आहाहा! वह चक्षु आत्मा की नहीं, उसे और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं, वह तो जड़, मिट्टी, पुद्गल है।

**स्पर्श...** शरीर का स्पर्श, उसे और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! इन सोलह पदों के भिन्न-भिन्न सोलह गाथासूत्र व्याख्यान करना,.... व्याख्यान करना अर्थात् स्पष्ट करना - ऐसा कहते हैं। आहाहा! और इसी उपदेश से अन्य भी विचार लेना। टीका में तो जयसेनाचार्य ने तो ऐसा लिया है कि इससे असंख्य प्रकार हैं, असंख्य प्रकार के विभाव जो विकल्प हैं - अनेक प्रकार के; उन्हें और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। यह चैतन्य से भरपूर भगवान, ऐसे जड़ का कोई भी सम्बन्ध में कुछ भी नहीं आता। आहाहा!

## गाथा ३७

अथ ज्ञेयभावविवेकप्रकारमाह -

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।  
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेत्ति॥३७॥

नास्ति मम धर्मादिर्बुध्यते उपयोग एवाहमेकः।

तं धर्मनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायका ब्रुवन्ति॥

अमूनि हि धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवान्तराणि स्वरसविजृम्भितानिवारित-  
प्रसरविश्वघस्मरप्रचण्डचिन्मात्रशक्तिकवलिततयात्यन्तमन्तर्मगनानीवात्मनि प्रकाश-  
मानानि टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावत्वेन तत्त्वतोऽन्तस्तत्त्वस्य तदतिरिक्तस्वभावतया  
तत्त्वतो बहिस्तत्त्वरूपतां परित्यक्तुमशक्यत्वान्न नाम मम सन्ति। किंचैतत्स्वयमेव च  
नित्यमेवोपयुक्तस्तत्त्वत एवैकमनाकुलमात्मानं कलयन् भगवानात्मैवावबुध्यते  
यत्किलाहं खल्वेकः ततः संवेद्यसंवेदकभावमात्रोपजातेतरेतरसंवलनेऽपि परिस्फुट-  
स्वदमानस्वभावभेदतया धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवान्तराणि प्रति निर्ममत्वोऽस्मि,  
सर्वदैवात्मैकत्वगतत्वेन समस्यैवमेव स्थितत्वात्। इतीत्थं ज्ञेयभावविवेको भूतः।

अब, ज्ञेयभाव के भेदज्ञान का प्रकार कहते हैं —

धर्मादि वे मेरे नहीं, उपयोग केवल एक हूँ।

इस ज्ञान को, ज्ञायक समय के धर्मनिर्ममता कहे ॥३७॥

\*गाथार्थ : [ बुध्यते ] यह जाने कि [ धर्मादिः ] 'यह धर्म आदि द्रव्य [ मम

\* इस गाथा का अर्थ ऐसा भी होता है — 'धर्म आदि द्रव्य मेरे नहीं हैं, मैं एक हूँ' ऐसा उपयोग ही जाने, उस उपयोग को समय के जाननेवाले धर्म प्रति निर्मम कहते हैं।

नास्ति ] मेरे कुछ भी नहीं लगते, [ एकः उपयोगः एव ] एक उपयोग ही [ अहम् ] मैं हूँ' [ तं ] ऐसा जानने को [ समयस्य विज्ञायकाः ] सिद्धान्त के अथवा स्वपर के स्वरूपरूप समय के जाननेवाले [ धर्मनिर्ममत्वं ] धर्मद्रव्य के प्रति निर्ममत्व [ विदंति ] जानते हैं-कहते हैं।

टीका : अपने निजरस से जो प्रगट हुई है, जिसका विस्तार अनिवार है तथा समस्त पदार्थों को ग्रसित करने का जिसका स्वभाव है ऐसी प्रचण्ड चिन्मात्रशक्ति के द्वारा ग्रासीभूत किये जाने से, मानो अत्यन्त अन्तर्मग्न हो रहे हों-ज्ञान में तदाकार होकर डूब रहे हों, इस प्रकार आत्मा में प्रकाशमान यह धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और अन्य जीव — ये समस्त परद्रव्य मेरे सम्बन्धी नहीं हैं; क्योंकि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावत्व से परमार्थतः अन्तरंगतत्त्व तो मैं हूँ और वे परद्रव्य मेरे स्वभाव से भिन्न स्वभाववाले होने से परमार्थतः बाह्यतत्त्वरूपता को छोड़ने के लिए असमर्थ हैं ( क्योंकि वे अपने स्वभाव का अभाव करके ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते ) और यहाँ स्वयमेव, ( चैतन्य में ) नित्य उपयुक्त और परमार्थ से एक, अनाकुल आत्मा का अनुभव करता हुआ भगवान आत्मा ही जानता है कि मैं प्रगट निश्चय से एक ही हूँ, इसलिए ज्ञेयज्ञायकभावमात्र से उत्पन्न परद्रव्यों के साथ परस्पर मिलन होने पर भी, प्रगट स्वाद में आते हुए स्वभाव के भेद के कारण धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और अन्य जीवों के प्रति मैं निर्मम हूँ; क्योंकि सदा ही अपने एकत्व में प्राप्त होने से समय ( आत्म पदार्थ अथवा प्रत्येक पदार्थ ) ज्यों का त्यों ही स्थित रहता है; ( अपने स्वभाव को कोई नहीं छोड़ता )। इस प्रकार ज्ञेयभावों से भेदज्ञान हुआ।

---

गाथा - ३७ पर प्रवचन

---

अब, ज्ञेयभाव के भेदज्ञान का प्रकार कहते हैं — ३७ ( गाथा )। वह भावकभाव की बात की, कर्म है, वह भावक है, उससे यह भाव्यभाव-यह सब दशायें, उनसे भिन्न बताया। अब, ज्ञेय, आत्मा जाननेवाला है और यह देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, छह द्रव्य, यह सब ज्ञेय-जाननेयोग्य है। आहाहा! उन्हें, और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं

है। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध व्यवहार है, बाकी वह चीज इसकी नहीं। आहाहा! आगे कहेंगे।

**णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।**

**तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति॥३७॥**

धर्मास्तिकाय है। काय है, हों! धर्म अर्थात् धर्म नहीं परन्तु धर्मास्तिकाय नाम का भगवान ने एक द्रव्य देखा है, छह द्रव्य भगवान ने-धर्मास्ति-अधर्मास्ति, आकाश, काल, जीव और पुद्गल - छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। तो धर्म आदि, आदि अर्थात् छहों द्रव्य।

**धर्मादि वे मेरे नहीं, उपयोग केवल एक हूँ।**

**इस ज्ञान को, ज्ञायक समय के धर्मनिर्ममता कहे ॥३७॥**

आहाहा! यह गाथार्थ, लो! धर्मी ऐसा जानता है कि यह धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्य, इनमें देव-गुरु और शास्त्र भी आ गये, वे परद्रव्य हैं। आहाहा! वे मेरे कुछ भी नहीं लगते। आहाहा! वे परजीव जो हैं, उन्हें और मुझे कुछ नहीं लगता। आहाहा! परमेश्वर सर्वज्ञदेव हैं, गुरु निर्ग्रन्थ आदि हैं, उन्हें और मेरे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! मुझे और उन्हें कुछ लगता नहीं है, एक उपयोग - एक उपयोग है, वह ही मैं हूँ। आहाहा! जानने-देखने का उपयोग, वह मैं हूँ, ऐसा जो जानना, उसे सिद्धान्त के, स्व-पर के स्वस्वरूपरूप समय के जाननेवाले धर्मात्मा मुनि, धर्मद्रव्य के प्रति निर्ममत्व कहते हैं। धर्म, अधर्म आदि छहों द्रव्य के प्रति, परजीव के प्रति, सिद्ध के प्रति, आहाहा! पंच परमेष्ठी के प्रति (निर्ममत्व कहते हैं)। वे परजीव हैं, मुझे और उनको क्या सम्बन्ध? आहाहा!

**टीका :** अपने निजरस से जो प्रगट हुई है,.... भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वभाव के अनुभव से प्रगट हुई है। जिसका विस्तार अनिवार है.... चैतन्यरसवाला प्रभु, उसकी शक्ति की व्यक्तता जो प्रगट हुई, आहाहा! वह प्रगट हुई है; पर के कारण नहीं, वह अपने निजरस से ही जो प्रगट हुई है। आहाहा! पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, वह निजरस से प्रगट हुआ है। किसी निमित्त के सम्बन्ध के कारण प्रगट हुआ है - ऐसा नहीं है। आहाहा! गुरु के उपदेश से प्रगट हुआ है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें! मेरा प्रभु

निजरस से भरपूर है और निजरस से प्रगट होता है। अपने स्वभाव की सामर्थ्य से पर्याय में प्रगट सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि होते हैं। आहाहा!

**जिसका विस्तार अनिवार है....** जिसकी निजरस की शक्ति की प्रगटता.... भगवान आत्मा की... उसे जगत में कोई रोक नहीं सकता - ऐसा जिसका विस्तार है। भगवान चैतन्यस्वभाव सागर है, समुद्र है, वह पर्याय में स्वयं रस से उछलता है। आहाहा! इस चैतन्य सरोवर भगवान समुद्र की वर्तमान पर्याय में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय निजरस से विस्तरित है। आहाहा! पर के कारण नहीं। व्यवहार था, इसलिए निजरस से विस्तरित है, यह नहीं। अरेरे! ऐसी बात है। अभी तो लोगों का यही शोर है, बस! व्यवहार करो तो निश्चय होगा, व्यवहार करो तो निश्चय होगा - ऐसी प्ररूपणा, वह मिथ्या प्ररूपणा है। आहाहा! समझ में आया ?

**निजरस से प्रगट हुई है...** भगवान आत्मा, आहाहा! क्या कहा समझ में आया ? आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप का सागर, आहाहा! उसके सन्मुख होकर-आश्रय लेकर निजरस से पर्याय प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आनन्दस्वरूप, वह निजरस से प्रगट होती है। किसी व्यवहार से होती है और निमित्त से होती है - ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

नीचे (फुटनोट में) कहा है जरा 'धर्म आदि द्रव्य मेरे नहीं हैं, मैं एक हूँ' ऐसा उपयोग ही जाने, उस उपयोग को, समय के जाननेवाले धर्म प्रति निर्मम कहते हैं। यह दूसरा अर्थ जरा बताया परन्तु वास्तव में तो आत्मा ही आत्मा को जानता है, बस! आहाहा! आत्मा उपयोग से जानता है - ऐसा भी भेद है। वह तो आत्माराम, आत्माराम, आत्मा में रमता हुआ जानता है। आहाहा!

**समस्त पदार्थों को ग्रसित करने का....** कहते हैं, अपने ज्ञानस्वभाव का जो रस पर्याय में प्रगट हो, उसे सर्व पदार्थों को ग्रसित करने का, जानने का उसका स्वभाव है। आहाहा! जैसे ग्रास अन्दर डूब जाता है; वैसे छह पदार्थ जो पर हैं-अनन्त तीर्थकर, अनन्त सिद्ध, पंच परमेष्ठी, अनन्त परमाणु, अनन्त परद्रव्य - इन सबको जानने का अर्थात् ग्रसित करने का स्वभाव है। आहाहा! **जिसका स्वभाव है,....** भगवान आत्मा का - ज्ञानस्वभाव

में से प्रगट हुई पर्याय, उस पर्याय को सभी अनन्त परद्रव्यों को ग्रसित करना – जान लेना – ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा!

**ऐसी प्रचण्ड चिन्मात्रशक्ति के द्वारा.... देखा! ऐसी प्रचण्ड.... तीव्र चिन्मात्रशक्ति द्वारा ग्रासीभूत किये जाने से,...** ऐसी चैतन्यमात्र की शक्ति द्वारा वह तो छह द्रव्यों को ग्रासीभूत कर गया। आहाहा! ग्रासीभूत है न? ग्रास, ग्रास – चैतन्य शक्ति भगवान आत्मा के स्वभाव का विस्तार होने पर, वह सर्व जगत को ग्रासीभूत कर जाता है, ग्रासीभूत कर जाता है। आहाहा! उसने जान लिया (सब)। अब ऐसी भाषा! ऐसा सुनने को मिले नहीं और बाहर की सब बातें करे – व्रत करो, तपस्या करो, यह करो, वह करो, दान करो, देश की सेवा करो,... अरे! भगवान की सेवा करो, प्रतिमा की (सेवा करो), यह सब राग है। आहाहा!

**चिन्मात्रशक्ति के द्वारा ग्रासीभूत किये जाने से, मानो अत्यन्त अन्तर्मग्न हो रहे हों....** भगवान ज्ञानस्वभावी प्रभु में से प्रगट हुई ज्ञानदशा, उसे छह द्रव्य तो मानो अन्तर्मग्न हो गये हों, छह द्रव्य अन्दर आ गये हों। प्रवचनसार में आता है न? आहाहा! उसकी पर्याय का इतना स्वभाव, भगवान का-आत्मा का है कि अनन्त सिद्ध और अनन्त निगोद के जीव, या अनन्त परमाणु और अनन्त स्कन्ध, उन्हें एक समय में एक क्षण में जानने का, ग्रासीभूत कर जाने का, ग्रासीभूत करने का जिसका स्वभाव है। आहाहा! मानो कि छह द्रव्य ज्ञान में प्रविष्ट हो गये हों!! उसका ज्ञान हुआ न, ऐसा। आहाहा!

अरेरे! ऐसी चीज जगत को कठिन पड़ती है। कुन्दकुन्दाचार्य तो यह फरमाते हैं। यह उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य करते हैं, वे भी ऐसा फरमाते हैं। आहा! दिगम्बर सन्तों की तो यह बात है। इससे आगे-पीछे करे, वह सब विपरीतदृष्टि है। आहाहा! और व्यवहार करो, व्रत पालो, अपवास करो, भक्ति करो, मन्दिर बनाओ... आहाहा! देश की सेवा करो, दुःखी के आँसू पोंछो, इससे तुझे लाभ होगा, यह तो मिथ्यादृष्टि की प्ररूपणा है। आहाहा! कठिन लगे ऐसा है। क्या हो, भाई! प्रभु! तेरे हित की बात है न नाथ! तू पर के सम्बन्धरहित और पर के कार्य को तू करे और करावे – ऐसा मानता है, प्रभु! उसमें तेरा हित क्या आया? आहाहा!

ज्ञान में तदाकार होकर डूब रहे हों,.... आहाहा! क्या? छह द्रव्य। अपने सिवाय अनन्त निगोद के जीव, अनन्त सिद्ध के जीव, पंच परमेष्ठी और शास्त्र के, शास्त्रों के, शास्त्र जो बारह अंग लिखे-पढ़े हों, आहाहा! वे ज्ञान की पर्याय में अन्दर ग्रासीभूत हो गये हों, आहाहा! डूब गये हों, ज्ञान में अन्दर छह द्रव्य डूब गये हों, अर्थात् उनका ज्ञान हो गया हो, ऐसा। आहाहा! ऐसा है यह।

एक-एक गाथा समयसार! अर्थात् गजब बात है, भाई! साक्षात् परमात्मा की दिव्यध्वनि-तीन लोक के नाथ की यह दिव्यध्वनि है। आहाहा!

कहते हैं, प्रभु तू कौन है? कि मैं तो चैतन्यलोक हूँ न नाथ! उसमें - चैतन्यलोक में तो चैतन्यशक्ति भरी है न! और चैतन्यशक्ति की भरी हुई पर्याय में यह चैतन्यशक्ति प्रगट-स्वयं से प्रगटती है न! आहाहा! यह प्रगटती है, उसमें छह द्रव्य मानो डूब गये हों, ग्रासीभूत-ग्रास कर गये हों। आहाहा! ऐसा है। निगल गया हो, निगल-निगल गया हो मानो। अर्थात्? ग्रास तो छोटा और ऐसा मुँह तो बड़ा है; वैसे ज्ञान की पर्याय तो महा बड़ी है, उसमें छह द्रव्यों का तो कहीं ग्रास कर गया, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान चैतन्यरस का सागर, उस चैतन्य की पर्याय में उछलता है, प्रगट होता है। यह उसके द्रव्य-गुण और पर्याय तीन हो गये। उस पर्याय में मानो छह द्रव्य निगल जाता है, जान लेता है, डूब गये हैं, ग्रासीभूत कर गया है - ऐसा उसका - पर्याय का स्वरूप है। भाई! कठिन पड़े!

**इस प्रकार आत्मा में प्रकाशमान....** है। कौन? यह धर्म,.... धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। जड़-चैतन्य को गति करने पर उन्हें निमित्तरूप हो, ऐसा एक तत्त्व है। उससे गति होती है - ऐसा नहीं। आहाहा! वैसे निमित्त को धर्मास्तिकायवत् कहा है। यहाँ जीव और जड़ (परमाणु) गति करे, उसमें धर्मास्तिकाय निमित्त है। वैसे ही प्रत्येक पर्याय स्वयं से परिणमे, तब उसे निमित्त दूसरी चीज को कहा परन्तु परिणमती है, वह निमित्त से परिणमती है - ऐसा नहीं है। यह निमित्त और व्यवहार के बड़े झगड़े हैं। यह निमित्त और उपादान, निश्चय और व्यवहार, उसमें क्रमबद्ध एक नहीं डाला... चार कारण सर्वत्र वर्णन करते हैं परन्तु यह क्रमबद्ध साथ में डालना चाहिए न? यहाँ से विरुद्ध चार



या चार लेते हैं परन्तु क्रमबद्ध नहीं और क्रमबद्ध का निर्णय करने जाये तो सारा फेरफार उड़ जाता है। आहाहा!

द्रव्य की जिस समय जो पर्याय अपने से होने योग्य हो, वह होती है। वह उसका जन्मक्षण है। दूसरे निमित्त के कारण से वह होती है - ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं है। निमित्त हो, परन्तु उससे होती है। उसमें हुई, उस समय की वह वह द्रव्य की, उस ज्ञेय का ऐसा स्वभाव, ऐसा वर्णन किया है। प्रवचनसार में (किया है) जितने ज्ञेय हैं, उनका ऐसा स्वभाव है कि जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह उसका जन्म का क्षण है, उत्पत्ति का वह काल है। उस उत्पत्ति के काल में भले निमित्त हो परन्तु निमित्त से उत्पत्ति काल हुआ है - ऐसा नहीं है। आहाहा! यह बड़ा झगड़ा! अभी हस्तिनापुर में यहाँ के विरोध में शिक्षण शिविर चलायेंगे। उपादान में निमित्त हो तो होता है, निश्चय भी व्यवहार होवे तो होता है (ऐसा वे कहते हैं) अरे! भगवान सुन न भाई! ऐसी तेरी बातें साधारण... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, वे छह द्रव्य उस जानने के स्वभाव में तदाकार हो गये हों... ज्ञानरूप तदाकार हों, वस्तु कोई आती नहीं यहाँ। आवे कौन? **धर्मास्तिकाय**, **अधर्मास्तिकाय**, वह जगत में एक द्रव्य है, भगवान ने देखा हुआ (द्रव्य है) गति करते हुए पदार्थ स्थिर हो, तब अरूपी अधर्मास्तिकाय है, वह निमित्त है। **आकाश...** (अखण्ड एक)। **काल** असंख्य हैं। **पुद्गल** अनन्त हैं **और अन्य जीव...** अन्य जीव में स्त्री, कुटुम्ब और परिवार भी आये और देव-गुरु तथा शास्त्र भी आये। शास्त्र अजीव में जाते हैं, देव-गुरु जीव में जाते हैं। आहाहा! देव-गुरु-धर्म (शास्त्र) से भी लाभ न हो, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा!

तेरा भगवान जीवस्वभाव अन्दर उछलता है, वहाँ तुझे पर का क्या काम है - ऐसा कहते हैं। **ये समस्त परद्रव्य मेरे सम्बन्धी नहीं हैं;**... वे सभी परद्रव्य हैं। अनन्त सिद्ध परद्रव्य हैं, पंच परमेष्ठी परद्रव्य हैं। मेरे भगवान को (निजात्मा को) और उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वे परद्रव्य, सर्व परद्रव्य मेरे सम्बन्धी नहीं हैं। क्यों नहीं है? यह विशेष कहेंगे... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)